दी नेहु जर्नल, वर्ष : ५, संख्या : १ व २, २००७

# त्रिपुरा राज्य के जनजातीय समुदाय की धर्म तथा संस्कृति : कल और आज

खुमतिया देववर्मा

मनुष्य ने जब से विचार करना शुरू किया तब से वह सभ्यता की ओर बढ़ने लगा । वह उसी समय से अपने-आप को पहचानने लगा । उसने अपने अस्तित्व को खोजा कि वह कहाँ से आया, क्यों आया और कहाँ जाएगा उसकी और भी जिज्ञासा हैं-- इस धरती की पहाड़-पठार, पेड़-पौधे, फल-फूल, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र, ग्रीष्म-शीत को किसने बनाया ? कौन इनका कारक है ? मनुष्य ने धीरे-धीरे इन विचारों को जाना कि इन सबके पीछे एक सर्वोच्च शक्ति का हाथ है, उसी का नाम ईश्वर है । इस धरती पर जितने भी तत्त्व है सबमें ईश्वर का वास है । अग्नि, जल, पहाड़-पत्थर, पेड़-पौधे -- इन सब के बिना मनुष्य का जीवन संभव नहीं है । इसलिए मनुष्य के विचारों में यह सब ईश्वर हैं । मनुष्य के विचारों में उनका जीवन, मृत्यु, बीमारी इन सब के पीछे ईश्वर का हाथ है । इन सब विचारों के बीच ही अच्छा-बुरा छोटे-बड़े ईश्वर की धारणा उत्पन्न हुई ।

अब हम त्रिपुरा की जनजाति की देवी-देवता से संबंधित विचारों के बारे में चर्चा करेगें । जिस प्रकार हिन्दू धर्म की अनेक देवती-देवताएँ हैं, उसी प्रकार हमारे जनजाति में भी अनेक देवी-देवताओं की मान्यता है । परन्तु इन देवताओं के नाम अलग-अलग है, जो उनकी अपनी भाषा में है । जनजाति समुदाय के मान्यता के अनुरूप सभी देवी-देवताओं के बीच 'लामप्रा वाथप' (बांस के द्वारा की जाने वाली विशिष्ट पूजा) प्रमुख है । जिन स्थानों पर दो से अधिक मार्ग आकर मिलते है, वहाँ गाँव की पवित्रता के लिए बाँधा रूपी बाँस लगा दी जाती है । पूजा सम्पन्न होने से पूर्व न तो कोई उसमें से जा सकता है और न ही आ सकता है । उसी तरह संसार में नियम बनते है । जैसे जो जन्म लेता है, उसका मृत्यु निश्चित होता है । इसमें उसकी कोई इच्छा नहीं चलती है । ईश्वर की इच्छा से ही मनुष्य का जन्म, जीवन तथा मृत्यु होता है । 'लामप्रा वाथप' पूजा इन सब विचारों को लेकर ही की गई है । जिस प्रकार हिन्दू धर्म में ब्रह्मा, विष्णु, महेश है उसी प्रकार हमारे मान्यताओं में भी इनकी धारणा है । इसीलिए जन्म, जीवन, मृत्यु आदि के लिए ईश्वर की पूजा अर्चना करते आ रहे है । जन्म से लेकर मृत्यु तक किए जाने वाले पूजा में सर्वप्रथम वंदना अवश्य करते है ।

हमारी जनजाति समुदाय में दुरात्माओं की मान्यताएँ भी प्रचलित है । इनका वास पहाड़-पठार, घनी जंगलों में माना जाता है । हम कृषि करने वाले समुदाय पहाड़ी खेती करने से पहले जंगलों की कटाई के वक्त इन दुरात्मा की पूजा करते है । जब तक दुरात्मा का मन सन्तुष्ट नहीं होता कृषि की शुरुआत नहीं की जाती । इन दुरात्मा का मन सन्तुष्ट न होने पर बीमारी या अमंगल की परछाई पड़ती है, ऐसा माना जाता है । अतः हिन्दू धर्म की मान्यताओं के अनुसार इसे 'महादेव' कह सकते है ।

'माईलूमा-खूलूमा' इन समुदाय के द्वारा पूजी जाने वाली 'रोनदक' (लक्ष्मी पूजा) पूजा है । 'हुक' पहाड़ी खेती करने वाले सबसे ज्यादा मात्रा में चावल तथा कपास की खेती करते है । इनकी

प्राप्ति से ही किसी भी परिवार की आर्थिक स्थिति का पता चलता है । इसलिए जनजाति समुदाय के लोग धान की देवी (माईलूमा) और कपास की देवी (खूलूमा) की पूजा नई फसल की प्राप्ति पर 'रोनदक' (लक्ष्मी) के रूप में पूजा करते हैं । इन देवियों को हिन्दू धर्म की मान्यताओं के आधार पर लक्ष्मी देवी भी कह सकते हैं । इस प्रकार जनजाति समुदाय की 'तईमा' (नदी) हिन्दू धर्म के अनुसार 'गंगा' और बंगाली हिन्दुओं की 'डाकिनी', 'जोगिनी', को जनजाति समुदाय के मान्यता के अनुसार उसे 'दुरात्मा' कह सकते हैं । इस प्रकार हिन्दू धर्म की अनेक देवी-देवताओं के समान ही जनजाति समुदाय में भी अनेक अच्छे-बुरे देवी-देवता पूजे जाते हैं, जो विभिन्न रूपों और नामों से जाने जाते हैं ।

यहाँ एक और बात बताने योग्य है कि वैदिक युग में पूजा-पाठ, आहुति और यज्ञ के द्वारा होता था, उस नियम में देवताओं की मूर्ति बैठाकर पूजा करने के कोई नियम नहीं है । यह मूर्ति पूजा बाद में प्रचलित हुई । देखा जाए तो जनजाति समुदाय में भी मूर्ति पूजा का कोई चलन नहीं है, परन्तु मूर्ति के स्थान पर 'वाथप' (बाँस से बना विशिष्ट आकृति) की पूजा की जाती है । उसे वास्तविक मूर्ति नहीं कहा जा सकता । इससे हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि को ठोस मानना ही सत्य है । हम उसी प्रकृति की शक्ति पर विश्वास करते हैं, अतः जनजाति समुदाय के मान्यताएँ वैदिक युग के समान हैं, केवल देवताओं के नाम, रूप तथा पूजा अर्चना के तरीकों में भिन्नता है । इसलिए जनजाति समुदाय के द्वारा अपनी जाति को धर्म, दर्शन और संस्कृति संक्षेप में निम्न तथा पिछड़ा लोगका गलत धारणा है ।

यहाँ हम कह सकते है कि हिन्दू धर्म में देवी-देवताओं से संबंधित जो मान्यताएँ हैं उसी प्रकार जनजाति समुदाय में भी देवताओं की मान्यता है । अतः हम कह सकते हैं कि यहाँ की जनजाति लोगों ने हिन्दू धर्म के मूल तत्त्वों को समझा, जाना, पालन किया और उसका अनुसरण किया । हिन्दू धर्म कब इस जनजाति समुदाय में शामिल हुआ इस जनजाति समुदाय के अन्तर्गत एक बहुत प्राचीन और प्रसिद्ध मान्यता है -- 'मामिता पालन' (मकर संक्रान्ति) । प्राचीन काल में पहाड़ी खेती करने वाले जनजाति समुदाय पहाड़ी खेती की नई उपज होने की खुशी में इसका पालन करते हैं। इस पूजा को दुर्गा पूजा के समान ही धूम-धाम से मनाया जाता है । उपर्युक्त बातों से हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल से ही हमारे पूर्वज हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा अर्चना करते आ रहे हैं और त्रिपुरा राज्य में बंगाली के आगमन से बहुत पहले ही यह प्रचलन था। प्राचीन ग्रंथों के अनुसार बंगाली को आए ५५० साल हो चुका है । महाराजा रत्न मानिक्य (१४६४-८८) के द्वारा चलायी गयी मुद्रा में दुर्गा के चिह्न देखे जा सकते हैं । उस समय बंगाली समुदाय दुर्गा पूजा को बड़े धूमधाम से मनाते थे । जिसे यहाँ के जनजाति समुदाय भी मनाते थे, परन्तु गरीब जनता तथा पहाड़ी मज़दूर को इस पूजा को मनाने की अनुमति नहीं थी । इस पूजा में उपजाति समुदाय की अलग-अलग वंश के वृद्धों तथा महाराजा, मंत्री, सेनापति आदि उच्च वर्ग के लोगों को ही पूजा में आमंत्रित किया जाता था, इसलिए आम जनता का इस पूजा के प्रति विरक्त भाव देखा गया ।

दूसरी ओर जनजाति समुदाय में पहाड़ी खेतों पर गुजारा करने वालों में अनेक देवती-देवता की पूजा देखने को मिलता है । अनेक वर्षों से पहाड़ी खेती से ही लोगों की रहन-सहन, खान-पान और नियमों की पहचान बनी । इन लोगों की पहाड़ी खेती को लेकर ही एक उत्सव है -- 'मामिता

पालन' (मकर संक्रान्ति) । पहाड़ी खेती करके जीवन बिताने वाले अपनी खेत की नई उपज को भण्डार घर में रखने के दौरान यह उत्सव बड़े धूमधाम से मनाई जाती है । इस उत्सव में सभी परिवार के बुजुर्ग, स्त्री-पुरुष, बच्चे आदि शामिल होते है । जिसमें खाना-पीना, गाना-बजाना, नृत्य सभी कुछ होता है । 'मामिता पूजा' में पहाड़ी खेती करके जीवन व्यतीत करने वाले जनजाति समुदाय के लिए आनन्द का माहौल होता है । इसलिए इस पूजा को हर्षोल्लास दुर्गा पूजा से कम नहीं आंका जा सकता ।

जनजाति समुदाय ने हिन्दू धर्म के रीति-रिवाजों को कब से अपनाना शुरू किया? और कब बंगाली 'ब्राह्मण, पुरोहित' का आगमन हुआ --उस समय को ठीक-ठीक बताना कठिन है, परन्तु यह सत्य है कि हिन्दी धर्म और ब्राह्मण, पुजारियों का नियम लेकर ईश्वर की पूजा -- ये दोनों इस समुदाय के अन्दर जल्दी तथा अच्छे से आगमन हुआ और इसका अनुसरण भी किया गया । इसे और स्पष्ट रूप से समझने के लिए त्रिपुरा की ग्रंथों की ओर दृष्टिपात करना आवश्यक है । त्रिपुरा के राजाओं में महाराजा धर्म मानिक्य (१४३१-६२) हुए जो संस्कृत और बंगला में रूचि रखते थे तथा इन भाषाओं को आगे बढ़ाने में सहायक रहे हैं । वे ही एक ऐसे राजा थे जिन्होंने सर्वप्रथम ग्रंथों की रचना में हाथ दिया एवं इसके लिए अपने पुरोहित दुर्बलेन्दर के द्वारा सूत्रधर और बानेश्वर के नाम से दो ब्राह्मण भाई को रखा । पुरोहित दुर्बलेन्दर के योगदान से ये दो ब्राह्मण पण्डित वंश के प्रथम ग्रंथ की रचना 'राज रत्नाकर' के नाम से बंगला भाषा में लिखा गया । महाराजा धर्म मानिक्य हिन्दू धर्म के कट्टर अनुयायी थे ।

'राजमाला' के अनुरूप महाराज रत्न मानिक्य ने ४,००० बंगाली परिवारों को उस समय की राजधानी उदयपुर तथा उसके आस-पास शरण दिया । उनमें अधिकांशतः ब्राह्मण कायस्थ, वैष्णव परिवार थे और कुछ लोगों को राजकार्य में लगाया । महाराज रत्न मानिक्य शिव, दुर्गा, नारायण और कृष्ण में आस्था रखते थे । उनके समय से शैव, वैष्णव और शाक्त धर्म आसपास प्रचलित रहे । इस तरह हम कह सकते है कि महाराज रत्न मानिक्य के समय से बंगाली तथा जनजाति के लोग मिलजुल कर रहे । सती से जनजाति समुदाय के अन्तर्गत हिन्दू धर्म तथा बंगाली जाति का प्रभाव देखा गया है । तत्पश्चात्

महाराज मानिक्य राज्य के अलग-अलग स्थानों में हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा के रूप में अनेक मन्दिर बनवाएँ । उनमें प्रमुख हैं -- उदयपुर की त्रिपुरेश्वरी, महादेव और जगन्नाथ मन्दिर । कस्बा की काली देवी की मन्दिर और पुराना अगरतला में चौदह देवता के मन्दिर । मानिक्य वंश के राजाओं में महाराज धन्यमानिक्य सर्वोत्तम रहे । इन्होंने उदयपुर में १५०१ में मन्दिर बनवाकर त्रिपुरेश्वरी देवी को प्रतिष्ठित किया ।

त्रिपुरा के ग्रंथों में महाराज बीरचन्द्र मानिक्य (१८६२-९६) को उस काल का युग प्रवर्तक कहा जाता है । उनके समय में त्रिपुरा की राजदरबार में प्रसिद्ध गायक यदू भट्ट और सुशिक्षित लोग आए । इसी कारण इन्हें विक्रमादित्य कहा गया । ये वास्तव में वैष्णव धर्म को मान, राज्य में वैष्णव धर्म के प्रचार के लिए प्रयास करते रहे । कह सकते हैं कि बीरचन्द्र मानिक्य के काल में जनजाति समुदाय फिर से वैष्णव धर्म की ओर खींची और बाद में यह धर्म राज्य की जनजाति समुदाय के द्वारा स्वीकृत किया गया । जनजाति समुदाय में उत्सव या कोई भी धार्मिक कार्य होता

है तो उसमें बलि और मदिरा की व्यवस्था की जाती है । मांसाहारी तथा मदीरापान करने वाले इस समुदाय के लोग जब वृद्ध हो जाते हैं तब वैष्णव धर्म को पूजने तथा पालने की इच्छा रखने लगते हैं । इसलिए प्रतिवर्ष देवताओं की पूजा के साथ-साथ 'भगवद्गीता पाठ' तथा हरिसभा भी की जाती है । सन् १९५६-५७ ई. में राज्य की जनजाति वैष्णवों की सभा इसी के अनुरूप हुई । इस सभा में उस समय की विक्रम सागर (आज रूद्रसागर) में तीर्थ की व्यवस्था हुई । तभी से आज भी रूद्रसागर में मकर संक्रान्ति के प्रातःकाल सभी स्नान करते हैं, अस्थि प्रवाह करते हैं तथा इस दिन बहुत बड़ा मेला लगता है ।

इस जनजाति समुदाय में वैष्णव धर्म के अलावा विशेष रूप से विवाह तथा क्रियाकर्म के कार्यों में बंगाली रीति-रिवाज का प्रभाव बढ़ता जा रहा है । यह जनजाति अपने देवी-देवताओं की पूजा के साथ-साथ लक्ष्मी पूजा, सरस्वती पूजा, होली आदि त्यौहार भी बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं । 'बाऊल गीत' तथा 'कीर्तन' भी इस समुदाय में आत्मानंद के लिए प्रतिष्ठित हुई ।

त्रिपुरा जनजाति समुदाय में एक और बंगाली जाति का प्रभाव देखने को मिलता है । वह है -- नौटंकी । एक समय था जब शिक्षा तथा धर्म पर आधारित नौटंकी लिखे जाते थे और उसे जनजाति समुदाय बड़े आनन्द से खेला करते थे । सन् ७० के पहले जमातिया समुदाय के गाँवों में नौटंकी दल रहा करता था । उनमें से कई तो कलकत्ता की नौटंकी सिखाने वाले को लाते ओर उनसे सीखते थे । सन् ७० के बाद इस समुदाय के युवक-युवतियाँ कॉकबरक में लिखित नौटंकी का प्रहसन करने लगे ।

इस जनजाति में वैष्णव धर्म के लोगों की कमी लगभग सन् ७० से हुई। आज इस समुदाय के युवक-युवतियों के हाथों में 'बाइबल' देखने को मिलता है । समय के साथ-साथ आज समूह के समूह युवक-युवतियाँ ईसाई धर्म में प्रवृत्त हो रहे हैं । जनजाति समुदाय के लोगों के बीच से आज मृदंग, तीनतारा, करताल आदि वाद्य यंत्र लुप्त हो रहे हैं। सिर्फ यही नहीं सारंगी, दांगदू, चौंगप्रेग आदि भी विलुप्त हो रहे हैं । इसी प्रकार गीत भी देखे जा सकते हैं -- जादूनी गीत (मनचाहा गीत) जो अब गाए नहीं जाते । वर्तमान युवक-युवतियाँ आधुनिक हिन्दी के गीत तथा कॉकबरक गीत गाते हैं, साथ ही गिटार भी बजाते हैं । इन सब के बावजूद भी हम कह सकते हैं कि जनजाति समुदाय के लोग आज भी जन्म, विवाह, मृत्यु और अन्य कार्यों तथा देवी-देवताओं की पूजा के समय ब्राह्मण पुजारी के द्वारा विधिवत् करते हैं । इसके साथ-साथ इन्हें जीवन के क्रिया-कलापों में भी अपनाया जाता है ।

डॉ. सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय लिखते हैं -- ''जब जाति से जाति या समुदाय से समुदाय का एक दूसरे से परस्पर संबंध होता है तब उसका प्रभाव कभी भी एक जैसा नहीं होता ।''

अतः त्रिपुरा जनजाति समुदाय की संस्कृति अर्न्तमिश्रित संस्कृति के रूप में जाना जाए । इसी से राज्य में शान्ति तथा समृद्धि सुदृढ़ होगी ।

**संदर्भ सूची :**

१. देववर्मा नरेश चन्द्र, जोरानी मखांग (समय का दर्पण) हाचुक नी खरांग पब्लिकेशन कृष्णनगर अगरतला, प्रकाशन वर्ष - २००६ ई.

२. देववर्मा नरेश चन्द्र, जीवन जिज्ञासा पत्रिका, पब्लिकेशन कृष्णनगर अगरतला, प्रकाशन वर्ष - २००६ ई.

३. देववर्मा तारिणी, त्रिपुरानि वेरांग कथमा, ट्राइबेल रिसर्च इंस्टिट्यूट, अगरतला प्रकाशन वर्ष - २००३ ई.

४. देववर्मा नरेन्द्र, प्राचीन त्रिपुरार लोकसंगीत संकलन, त्रिपुरा ट्राइबेल रिसर्च इंस्टिट्यूट, अगरतला, प्रथम संस्करण

५. काण्डवाल दिनेश, त्रिपुरा आदिवासी जनजातियाँ लोककथाएँ, त्रिपुरा ट्राइबेल रिसर्च इंस्टिट्यूट, अगरतला, प्रकाशन वर्ष - २००० ई.

६. देववर्मा अरूण, सिंह आर जे, हिस्ट्री ऑफ त्रिपुरा, त्रिपुरा ट्राइबेल रिसर्च इंस्टिट्यूट, अगरतला, प्रथम संस्करण

७. त्यागी के. ट्राइबेल फोकटेल्स ऑफ त्रिपुरा, त्रिपुरा ट्राइबेल रिसर्च इंस्टिट्यूट, अगरतला प्रकाशन वर्ष प्रथम संकरण

प्रवक्ता
कॉकबरक विभाग
त्रिपुरा विश्वविद्यालय, अगरतला